



# त्र्यम्बकं यजामहे...



परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी महाराज

## त्र्यम्बकं यजामहे...

(दिनांक 09/05/2020 ई0 को पूज्य महाराज जी द्वारा पालघर से बरचर आश्रम पधारने के पश्चात् पालघर आश्रम के एक भक्त दीक्षित जी द्वारा महामृत्युंजय मंत्र 'त्र्यम्बकं यजामहे....', रुद्रीपाठ और रुद्राभिषेक के धार्मिक औचित्य की जिज्ञासा पर दिनांक 20/05/2020 को पूज्य महाराज जी द्वारा प्रस्तुत विचार।)

आदिशास्त्र श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—

**यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।**

**स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥** (गीता, 18/46)

जिस परमात्मा से यावन्मात्र जीव-जगत् की उत्पत्ति हुई है, जिससे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वर को 'स्वकर्मणा'—अपने स्वभाव से उत्पन्न कर्म के द्वारा अर्चन-पूजन करके मानव परम सिद्धि को प्राप्त होता है, जिसके पश्चात् कुछ भी पाना शेष नहीं रहता। स्वभाव में क्षमता शूद्र श्रेणी की है तो सेवा-स्तर का कर्म होगा लेकिन पूजा उसी परमात्मा की होगी जो तत्त्वरूप से सर्वत्र व्याप्त है। साधक की क्षमता वैश्य श्रेणी की है तो वह गो-संयम अर्थात् इन्द्रिय-रक्षा, आत्मिक सम्पत्ति संग्रह के स्तर से पूजन में लगे लेकिन पूजन उसी परमात्मा का करना है जिसके तेज के अंशमात्र से सृष्टि का सृजन, पालन और परिवर्तन होता रहता है। क्षत्रिय श्रेणी का साधक है तो शौर्य, तेज, पराक्रम, साधनात्मक संघर्ष से पीछे न हटने का स्वभाव के स्तर का कर्म होता है। किन्तु पूजन किसका करे? पूजन उस परमात्मा का ही करना है जो सर्वत्र व्याप्त है, जिससे सभी की उत्पत्ति है। ब्राह्मण श्रेणी का साधक है तो स्वभाव में शम, दम, तप, शौच, मन का शमन, इन्द्रियों का दमन, अनुभवी उपलब्धि, वास्तविक जानकारी, धारणा, ध्यान इत्यादि कर्म होते हैं, किन्तु वह भी भजन किसका करे? उसी परमेश्वर का, जिससे सब भूतों की उत्पत्ति है, जिससे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है। इस प्रकार अपने स्वभाव से उत्पन्न कर्म के द्वारा अर्चन कर मानव परम सिद्धि को प्राप्त होता है। गीता के अनुसार पूजा एक परमात्मा की। गीता का वर्ण साधना के आन्तरिक सोपान हैं। गीता बाहर समाज में जातियों का बँटवारा नहीं करती।

स्वकर्म एक ही साधक की साधना के चार क्रमोन्नत सोपानों के कर्म हैं जिन्हें गीता में वर्ण कहा गया है। गीता की ही नकल करके व्यवस्थाकारों ने मानव-समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जैसी चार ऊँच-नीच, घृणामूलक जातियों और असंख्य उपजातियों में बाँटकर, उनके कार्यों को महापुरुषों के नाम से प्रचारित स्मृतियों में लिखकर एक परमात्मा की पूजा के स्थान पर प्रत्येक जाति के अनेकानेक देवी-देवताओं का सृजन कर डाला, जैसे- शूद्र भूत-भवानी पूजे, क्षत्रिय दुर्गा की पूजा करे (वह भी हर परिवार की अपनी अलग-अलग दुर्गा!), वैश्य लक्ष्मी की पूजा करे तो ब्राह्मण सरस्वती की। परमात्मा की पूजा के लिए कोई जाति बची ही नहीं। ये समाज के विकृत रीति-रिवाज हैं। गीता इनका समर्थन नहीं करती। गीता में जातिगत ऊँच-नीच है ही नहीं। गीता के अनुसार सभी मनुष्य एक परमात्मा की संतान हैं। सबकी पूजा का परमात्मा एक, साधना एक और पूजन के अंत में मिलनेवाली परम सिद्धि सबके लिए एक समान है।

इतना स्पष्ट निर्देश होते हुए भी लोग एक परमात्मा के स्थान पर अन्य-अन्य देवी-देवताओं की पूजा में उलझे हैं। क्यों? भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं-

**कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।**

**तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया॥ (गीता, 7/20)**

अर्थात् कामनाओं द्वारा जिनके विवेक का अपहरण कर लिया गया है, वे ही अपनी प्रकृति अर्थात् जन्म-जन्मान्तरों से अर्जित संस्कारों के प्रभाव से प्रेरित होकर अन्य-अन्य देवताओं और उनके लिये प्रचलित नियमों की शरण लेते हैं। जब हर कामना ईश्वर से सुलभ है (भगवान कहते हैं कि मुझे भजकर लोग स्वर्गिक सुख की कामना करते हैं, मैं उन्हें देता हूँ (गीता, 9/20)) तो परमात्मा से पृथक् देवता, जिनका अपना कोई अस्तित्व ही नहीं है, उनका पूजन नास्तिकता को बढ़ावा देना है।

**व्यवसायात्मिका बुद्धरेकेह कुरुनन्दन।**

**बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्॥ (गीता, 2/41)**

अर्जुन! इस निष्काम कर्मयोग में क्रियात्मिका बुद्धि एक है, क्रिया एक है, परिणाम भी एक ही है। आत्मिक सम्पत्ति ही स्थिर सम्पत्ति है। इस सम्पत्ति को प्रकृति के द्वन्द्व से शनैः-शनैः अर्जित करना व्यवसाय है। यह व्यवसाय अथवा निश्चयात्मिका

क्रिया एक है। तब जो लोग बहुत-सी क्रियायें करते हैं या बताते हैं, क्या वे भजन नहीं करते? भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं— हाँ, वे भजन नहीं करते। उन पुरुषों की बुद्धि अनन्त (जो गिनी न जा सके) शाखाओंवाली होती है इसलिए वे अनन्त क्रियाओं को गढ़ लेते हैं। वे केवल गढ़ते ही नहीं,

**यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।**

**वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः॥**

**कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।**

**क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति॥ (गीता, 2/42-43)**

अर्जुन! वे 'कामात्मानः'— कामनाओं से युक्त, 'वेदवादरताः'— वेद के वाक्यों में अनुरक्त, फलश्रुति में अनुरक्त (फलवाले वाक्यों में ही अनुरक्त रहते हैं कि यह फल मिलेगा, वह फल मिलेगा) वेद के वाक्यों को प्रमाण मानते हैं कि वेद में यह लिखा है, वेद में ऐसा लिखा है; स्वर्ग को ही श्रेष्ठ मानते हैं कि स्वर्ग के आगे कुछ नहीं... उनकी बुद्धि अनन्त भेदोंवाली है इसलिए अपने मन से ये अनन्त क्रियाओं को गढ़ लेते हैं। उन्होंने वेद रट डाला, उन्हें स्वर्ग मिला, इन्द्र-पद को भी विभूषित किया, किन्तु 'जन्मकर्मफलप्रदाम्'—जन्म-मृत्यु का अनन्त फल पिण्ड नहीं छोड़ा।

**भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।**

**व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥ (गीता, 2/44)**

उनकी वाणी की छाप जिन-जिन के चित्त पर पड़ जाती है, अर्जुन! उनकी भी बुद्धि नष्ट हो जाती है, न कि वे कुछ पाते हैं। उस वाणी द्वारा हरे हुए चित्तवालों के और भोग-ऐश्वर्य में आसक्त पुरुषों के अन्तःकरण में क्रियात्मिका बुद्धि नहीं रह जाती। इष्ट में समाधिस्थ करनेवाली निश्चयात्मिका क्रिया उनमें नहीं होती।

ऐसे अविवेकियों की वाणी सुनता कौन है? भोग और ऐश्वर्य में आसक्त पुरुष ही सुनते हैं, अधिकारी साधक कभी नहीं सुनता। प्रश्न उठता है कि 'वेदवादरताः'— जो वेद के वचनों में अनुरक्त हैं, क्या वे भी भूल करते हैं? इस पर भगवान कहते हैं—

**त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।**

**निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्॥ (गीता, 2/45)**

अर्जुन! 'त्रैगुण्यविषया वेदा'— वेद तीनों गुणों तक ही प्रकाश करते हैं। इसके आगे का हाल वेद भी नहीं जानते। वेद भी परमात्मा को 'नेति नेति' कहकर चुप हो जाते हैं इसलिए 'निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन'— अर्जुन! तू वेदों की अधिकृत भूमि तीनों गुणों से ऊपर उठ, वेदों के कार्यक्षेत्र से आगे बढ़।

प्रश्न उठता है कि हम ही उठें कि और भी कोई उठा है? कोई उठा है तो उसने क्या पाया? भगवान बताते हैं— जो वेदों की अधिकृत भूमि तीनों गुणों से ऊपर उठता है, वह ब्रह्म को जानता है। और जो ब्रह्म को जानता है, वह ब्राह्मण है। अर्जुन! तू वेदों की अधिकृत भूमि तीनों गुणों से ऊपर उठ अर्थात् ब्राह्मण बन। अर्जुन था तो क्षत्रिय, उसे बना रहे हैं ब्राह्मण!

**यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके।**

**तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः॥ (गीता, 2/46)**

सब ओर से परिपूर्ण जलाशय के प्राप्त होने पर मनुष्य का छोटे जलाशय (गड्ढा, गड़ही इत्यादि) से जितना प्रयोजन रह जाता है, अच्छी प्रकार ब्रह्म को जाननेवाले ब्राह्मण का वेदों से उतना ही प्रयोजन रहता है। वेद रहते जरूर हैं (शिशु कक्षा के लड़कों को पढ़ाने के लिए क माने कबूतर, ख माने खरगोश) लेकिन महापुरुष का उससे कोई प्रयोजन नहीं। गंगा की धारा आपके दरवाजे से निकल गयी तो पहले जिस गड़ही से आप काम चलाते थे, अब चलायेंगे क्या? स्वच्छ जलाशय के प्राप्त हो जाने पर गड़ही इत्यादि में लोग पशु नहला लेते हैं, महापुरुष का वेदों से उतना ही प्रयोजन रह जाता है।

इसी को भगवान ने गीता के अध्याय 16 में और भी स्पष्ट किया कि अर्जुन! अन्तःकरण की दो वृत्तियाँ पुरातन हैं— दैवी और आसुरी। महापुरुषों ने इन्हीं को विद्या और अविद्या, प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति मार्ग इत्यादि कई नामों से समझाया है। जिस मनुष्य के हृदय में दैवी सम्पद् कार्य करती है वह देवता है और जिसमें आसुरी सम्पद् का बाहुल्य है वह असुर है। आपका एक सगा भाई देवता तो दूसरा असुर हो सकता है। 'दैवी सम्पद् विमोक्षाय'—दैवी सम्पद् मुक्ति प्रदान करनेवाली है और आसुरी सम्पद् अधोगति तथा नीच योनियों में फेंकनेवाली होती है। अर्जुन! तू शोक मत कर क्योंकि तू दैवी सम्पद् को प्राप्त हुआ है, तू मुझे प्राप्त होगा, मेरे अविनाशी स्वरूप को

प्राप्त करेगा। जहाँ से पीछे लौटकर आवागमन में नहीं आते, उस स्वरूप को प्राप्त करेगा। तुम मुझमें निवास करोगे। जो मैं हूँ, तुम वही हो जाओगे।

उन्होंने दैवी सम्पद् के लक्षण गिनाये। अभय, अन्तःकरण की शुद्धता, तत्त्व ज्ञान के लिए ध्यान में लगन, सर्वस्व का समर्पण, इन्द्रियों का दमन, यज्ञ (जैसा गीता के अध्याय चार में बताया गया) इत्यादि 26 लक्षण गिनाये जो सब-के-सब साधना में लगे हुए साधक में सम्भव हैं, आंशिक रूप से आपमें, हम सबमें भी हैं। उन्होंने आसुरी सम्पद् के लक्षण बताये कि इस सम्पद् का बाहुल्य होने पर मनुष्य में अनन्त इच्छायें, अनन्त वासनयें, अनन्त तृष्णायें रहती हैं। वह सोचता है— वह शत्रु मेरे द्वारा मारा गया, आगे उसे मारूँगा; मेरे पास इतना धन है, इतना और होगा; मैं बड़े कुटुम्बवाला हूँ, ऐश्वर्यशाली हूँ; मैं यज्ञ करूँगा, दान दूँगा, यश को प्राप्त करूँगा। शास्त्रविधि तो उसे मालूम नहीं। ऐसे लोग शास्त्रविधि को छोड़कर दम्भ से यजन करते हैं, वे नरक में गिरते हैं। यज्ञ किया किन्तु नरक ने पिण्ड नहीं छोड़ा। यज्ञ है नहीं, यज्ञ नाम दे रखा है। यहाँ जौ डाल, यहाँ तिल डाल, यहाँ नवग्रह का नाम लें, वहाँ विष्णु का नाम लें... नाममात्र के यज्ञों द्वारा दम्भ से यजन करते हैं। यजन से तो भगवान को खुश होना चाहिए लेकिन भगवान नाराज हो गये। भगवान कहते हैं— ऐसे दम्भी अपने और दूसरों के शरीर में स्थित मुझ परमात्मा से द्वेष करने वाले हैं। दुश्मनी तो सीधे भगवान से हो गयी! मनुष्य मनुष्य से दुश्मनी करके बच जाता है (कहीं हाथ-पाँव जोड़कर, किसी नेता के यहाँ, दरोगा के यहाँ...), क्या ये भी बच जायेंगे? भगवान कहते हैं— नहीं, ऐसे क्रूरकर्मी, पापाचारी, नराधमों को मैं बार-बार आसुरी योनि में गिराता हूँ।

नाममात्र के यज्ञों से — यज्ञ है नहीं, नाम दे दिया यज्ञ का! वे कहते हैं— यही है यज्ञ — ऐसा करो, वैसा करो। वे दम्भ से यजन करते हैं। यजन अर्थात् भजन में समय भी देते हैं लेकिन उनका कर्म है क्रूर, हिंसापूर्ण। वे मनुष्यों का हनन करनेवाले हैं। वे करते हैं यज्ञ लेकिन भगवान कहते हैं उन्हें पापाचारी। करते हैं यज्ञ, हैं नराधम— मनुष्यों में अधम! धम माने धर्म होता है, अधम माने अधर्मी। तो भगवान कहते हैं— ऐसे नराधमों को मैं बार-बार आसुरी योनि में गिराता हूँ। वे मुझे न प्राप्त होकर कीटपतंगपर्यन्त उत्तरोत्तर गिरते ही जाते हैं। यज्ञ किया तो भगवान को प्रसन्न होना चाहिए लेकिन हो गये

नाराज। स्पष्ट है कि नाममात्र के यज्ञों से कुछ भी कर डालना यज्ञ होता ही नहीं। अन्य-अन्य देवताओं के नाम पर जो लोग यज्ञ कर-करा रहे हैं, भगवान कहते हैं- वे ही पापयोनि हैं; नहीं तो वे नरक में क्यों जा रहे हैं? यज्ञ भी किया किन्तु नरक ने पिण्ड नहीं छोड़ा। इसलिए भगवान कहते हैं- अर्जुन! तुम्हारे कर्तव्य और अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है। 'यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य' (गीता, 16/23)- इस शास्त्रविधि को छोड़कर अन्य-अन्य विधियों से जो भजते हैं, उनके जीवन में न सुख है, न सिद्धि है और न परम गति ही है।

कौन-सा शास्त्र? भगवान कहते हैं- यही गीता शास्त्र जो अभी मैंने बताया। 'इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।' (गीता, 15/20)- यह गोपनीय से भी अति गोपनीय शास्त्र जो मेरे द्वारा कहा गया, इसको त्यागकर, कामनाओं से प्रेरित होकर 'वर्तते कामकारतः'- अन्य-अन्य विधियों से जो चिन्तन करते हैं, सेवन करते हैं, 'न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।' - उनके जीवन में न तो सिद्धि है... परमात्म तत्त्व का विदित होना, सिद्ध हो जाना सिद्धि कहलाता है। यह छोटी-मोटी सिद्धियाँ नहीं कि मुट्ठी खोला तो निकल गया लड्डू। यह कोई सिद्धि नहीं। 'न सुखं'- 'राम बिमुख न जीव सुख पावै।' (मानस, 1/121/18) सुख उसे कहते हैं जिसके पीछे दुःख न हो। 'न परां गतिम्'- न परम गति है। वह सबसे भ्रष्ट हो जाता है। इसलिए अर्जुन!

**तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।**

**ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥** (गीता, 16/24)

तुम्हारे कर्तव्य और अकर्तव्य की व्यवस्था में कि मैं क्या करूँ, क्या न करूँ?- इसके समाधान में शास्त्र ही प्रमाण है। गीता भली प्रकार अध्ययन करके आचरण कर, तू मुझे प्राप्त होगा, मेरे अमृतमय परम पद को प्राप्त होगा, सदा रहनेवाली शान्ति और जीवन को प्राप्त कर लेगा। और कोई तरीका नहीं।

इस पर अर्जुन बोला-

**ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः।**

**तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः॥** (गीता, 17/1)

प्रभो! सबको तो शास्त्र उपलब्ध नहीं, उन्हें पता नहीं कि शास्त्र क्या है, विधि क्या है लेकिन श्रद्धा तो है, कुछ करते ही हैं। शास्त्रविधि से रहित, पूर्ण श्रद्धा से युक्त होकर लोग धर्म के नाम पर कुछ न कुछ करते ही रहते हैं, उनकी क्या गति है?

भगवान ने कहा— अर्जुन! मनुष्य श्रद्धामय है। एक भी व्यक्ति ऐसा दुनिया में नहीं जन्मा जिसमें श्रद्धा न हो। भगवान ने मानव तन जन्माया है तो श्रद्धा भरकर जन्माया है। वह श्रद्धा तीन प्रकार की होती है— सात्त्विकी, राजसी और तामसी। शास्त्रविधि से रहित सात्त्विकी श्रद्धावाले देवताओं को भजते हैं। शास्त्रविधि से रहित राजसी श्रद्धावाले यक्ष और राक्षसों को भजते हैं। शास्त्रविधि से रहित तामसी श्रद्धावाले भूत और प्रेतों को भजते हैं। भजते ही नहीं, घोर परिश्रम करते हैं, खून-पसीना एक करते हैं, कठिन व्रत-उपवास करते हैं किन्तु वे शरीररूप में स्थित भूत-समुदाय को और हृदय में स्थित मुझ अन्तर्यामी परमात्मा को कृश करनेवाले हैं। इन सबको तू असुर जान। भूतपूजक असुर, यक्ष-राक्षसपूजक असुर और देवतापूजक भी असुर। क्यों?

अभी हम गये थे एक स्थान पर। रास्ते में दो-एक ट्रक कंकड़ पड़े थे। हमने पूछा— यह क्या? लोगों ने बताया— यह देवता हैं। हमने पूछा— कैसे पैदा हुए? उन्होंने बताया— एक आदमी को बाघ खा गया था तो उसके ऊपर पाँच कंकड़ सब डालते हैं। बाघरक्षक देव हैं ये। कंकड़ की पहाड़ी बन गयी। बाघ खा लिया तो देवता! कोई कुएँ में गिर गया तो देवता! लाठियों की मार खाकर कोई ब्राह्मण मर गया तो ब्रह्म हो गया, ठाकुर मर गया तो पहलवान वीर हो गया। हर प्रान्त के अलग-अलग देवता हैं जिनको दूसरे प्रान्तवाले नहीं जानते। राजस्थानवाले देवताओं को आप नहीं जानते, आपके देवताओं को वे नहीं जानते। तलवारें चल जाती हैं, गोली चल जाती है इन देवताओं के पीछे। ये कोई देवता नहीं, केवल अंधविश्वास है।

भगवान कहते हैं— सात्त्विकी श्रद्धावाले देवताओं को पूजते हैं। तैंतीस करोड़ देवताओं की गणना तो कब की हो गयी थी, आज भी वे पैदा होते जा रहे हैं। कभी कोषाध्यक्ष थे कुबेर, पानी के मालिक थे वरुण! हमारे यहाँ काशी में पिशाचमोचन है। एक हनुमान जी का नाम संकटमोचन तो भीड़ लग गयी, क्योंकि संकट तो सबके पास है। दूसरे हनुमान जी का नाम रख दिया दानदाता हनुमान! आदमियों की कमी ढूँढ़ लो, कमी दूर करनेवाले देवी-देवता बना लो (चाहे संतोषी माई क्यों न हो), भीड़ लग जायेगी।



सात्त्विकी श्रद्धावाले देवी-देवता की पूजा करते हैं। एक परमात्मा को छोड़कर किसी का अस्तित्व नहीं है। काल पाकर ब्रह्मा भी अपने लोकसमेत मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। ब्रह्मा से उत्पन्न, दिति-अदिति की संतानें- देव, दानव और मानव पुनरावर्ती स्वभाववाले हैं। 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति'— ये पुनः-पुनः जन्मने और मरनेवाले हैं। देवी-देवता जन्म-मृत्यु की राह में भटकनेवाले जीव हैं। मरणधर्मा देवताओं की पूजा करनेवाला असुर नहीं तो क्या है?

अर्जुन! देवताओं में भी ऐसा कोई नहीं जो प्रकृति में उत्पन्न तीनों गुणों से अतीत हो। तीनों गुण विकार हैं, अनित्य हैं, नश्वर हैं। जो नश्वर की पूजा करता है, नास्तिक है। श्रद्धा सात्त्विक है तो देवताओं की पूजा, श्रद्धा राजसी है तो यक्ष-राक्षस की जिससे यशोवृद्धि हो। विधाता ने सृष्टि रची और कहा- जो सृष्टि का जलाशय है, संसार-समुद्र है, तुमलोग इसकी रक्षा करो, तो कुछ लोग बोले- नहीं, नहीं, हम पूजन करेंगे। कुछ लोग बोले- हम रक्षा करेंगे। विधाता बहुत खुश हुए। जिन्होंने कहा 'रक्षा करेंगे' उन्हें राक्षस की पवित्र उपाधि से विभूषित कर दिया और हाथ में शस्त्र पकड़ा दिया कि कोई गड़बड़ हो तो उसे ठीक कर दो। नाम पड़ गया राक्षस। राक्षस माने रक्षक - पुलिसवाले, सेनावाले। पहले लोग इतने भयग्रस्त थे, चौकीदार की लाल पगड़ी दिखे तो गाँव का गाँव खाली हो जाया करता था- भागो, राक्षस आ गये। जिससे यशोवृद्धि हो... भागकर कभी इस नेता तो कभी उस अधिकारी के यहाँ पहुँचते रहते हैं जिससे हम जीत जायँ, हमारी यशोवृद्धि हो। उनकी पूजा करते हैं राजसी गुणवाले। यक्ष माने जिनसे यशोवृद्धि हो, जिनसे सम्मान प्राप्त हो। राक्षस माने जो सुरक्षा करे।

तामसी गुणवाले भूत और प्रेतों की पूजा करते हैं। भूत नाम की सृष्टि में कोई आबादी तो है नहीं। भूत, भविष्य, वर्तमान तीन काल हैं। भूत माने जो बीत चुका है। वर्तमान- जो चल रहा है। भविष्य माने जो आनेवाला है। महापुरुष त्रिकालद्रष्टा होते हैं। भूतकाल के जैसे संस्कार, वैसा ही आपका जन्म। जन्म लेनेवाला हर व्यक्ति भूत है। भगवान शिव भूतनाथ कहे जाते हैं। आप कैसे भी हों, कूबड़े हों, सीधे हों - भोलेनाथ सबकी शरणस्थली हैं। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं- अर्जुन! जानते हो, ईश्वर कहाँ रहता है? 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशोऽर्जुन तिष्ठति।' (गीता, 18/61) ईश्वर सभी भूतों के हृदय में निवास करता है। यदि उन श्मशानवाले भूतों के हृदय में भगवान निवास

करता है तो हम मनुष्यों से लाख गुना ज्यादा अच्छे वे भूत हैं जो श्मशान में भटक रहे हैं, पेड़ पर कहीं लटके हैं या खण्डहर में कहीं चिपके हैं। भक्तों से भगवान तो झूठ बोलते नहीं। भूत माने जीवित प्राणी। वह ईश्वर हर प्राणी के हृदय में निवास करता है। कुत्तों में भी है, गधों में भी है, गाय में भी है। मनुष्य में विशेषता यह है कि इसमें श्रद्धा और बुद्धि विशेष है। यह श्रद्धा का पुतला है। माता-पिता का परिवार, अपना परिवार, ससुराल का परिवार, रिश्तेदार, गुरुजन – अर्जुन के इतने रिश्तेदारों में लगभग छः अरब लोग आ गये थे। आज भी जो आता है, बोलता है— बेटा सुखी हो, माई सुखी हो, नाती दुःखी है, मामा की लड़की है तो नाना की... इतना ही तो संसार है।

तामसी श्रद्धावाले प्रेतों की भी पूजा करते हैं। जो स्वजन मर गये, जो हमसे परे हो गये, उन्हें प्रेत कहते हैं। उनके लिए पिण्डदान करो, यह करो, वह करो। बाल-बच्चे जो असमय चले गये उन्हें श्रद्धांजलि देना— यह प्रेतपूजा है।

शास्त्रविधि से रहित राजसी श्रद्धावाले यक्ष और राक्षसों की पूजा करते हैं, घोर तप तपते हैं, खून-पसीना एक कर देते हैं लेकिन अर्जुन! शरीर के पुनः-पुनः होने का कारण अतीत के संस्कार हैं। जब शरीर जन्म ही गया तो भूत जन्मा। वे शरीररूप में स्थित, शरीर की संरचना के कारण, भूत-समुदाय को, शरीर के पुनर्निर्माण के कारण संस्कार को दुर्बल करनेवाले हैं और अन्तर्यामीरूप में स्थित— **‘सबके उर अंतर बसत, जानत भाव कुभावा।’**— मुझ परमात्मा को कृश करनेवाले हैं। भगवान भी कभी दुबले-पतले होते हैं क्या? जब उन्हें न भजकर माया में कहीं भटक गये – उल्टा-सीधा देवी-देवता नाम रख दिया, यज्ञ बना दिया, इस प्रकार वह और भटकता चला जाता है, उन परम आत्मा से दूरी पैदा करता चला जा रहा है। भगवान न मोटे हैं न पतले, बल्कि उनके और तुम्हारे बीच में दरार बढ़ती चली जाती है। परमात्मा जो तुम्हें प्राप्त होना था, चार जन्मों का झटका लग गया। वे शरीर में स्थित इस अंतर्यामी परमात्मा को कृश करनेवाले हैं। अर्जुन! इन सबको तू असुर जान। ये सब आसुरी वृत्तिवाले हैं। ये जो जितने आपसे अभिषेक करवाते हैं, पाठ करवाते हैं, मंत्र पढ़ते-पढ़ाते हैं, नश्वर कलेवरों के प्रति हवन कराते हैं, वे सब भगवान के शब्दों में असुर हैं। क्यों? नाममात्र के यज्ञों से दम्भ से यजन करते हैं वे क्रूरकर्मी हैं। यज्ञ है नहीं, यज्ञ नाम दे रखा है। इसके अतिरिक्त भोली-भाली जनता और विद्वानों को कुछ नहीं आता। ये सब असुर हैं।

इसलिए भजन एक परमात्मा का ही करना चाहिए।

भगवान कहते हैं— इस भजन में आरम्भ का नाश नहीं है। **‘स्वल्पमपस्यधर्मस्य त्रायते महतो भयात्’**— स्वल्प अभ्यास भी महान् जन्म-मृत्यु के भय से उद्धार करनेवाला होता है। कुछेक जन्मों के अन्तराल से वहीं पहुँच जायेगा जिसका नाम परम गति है, परम धाम है। जब हर जन्म में छूटी हुई साधना ही आगे बढ़ती जाती है, एक ही साधना को पूर्णता की ओर अग्रसर होना है तो धर्म-परिवर्तन कैसा? धर्म कभी नहीं बदलता। परिवर्तन खान-पान, वेशभूषा, भाषा, लिपि, रीति-रिवाज और उत्सव-परम्पराओं का हो सकता है, धर्म-परिवर्तन होता ही नहीं। धर्म-परिवर्तन कहने और करने-करानेवाले भ्रम में हैं।

महावीर स्वामी पिछले एक जन्म में लकड़ी काटनेवाले लकड़हारा थे। उन्होंने जंगल में एक महात्मा को देखा। यह छवि जिन्दगी में पहली बार देखी। वह देखते ही रह गये। जब तक महात्मा जंगल पार नहीं कर गये, तब तक देखते ही रह गये। इसी पुण्य से अगले जन्म में तीन महात्माओं को उन्होंने भोजन कराया। इसी पुण्य से अगले जन्म में साधु हो गये और चौबीसवें जन्म में तीर्थकर स्वरूप प्राप्त किया।

तीर्थ बाहर दुनिया में होता ही नहीं। **‘साधुनां दर्शनं पुण्यम्’**— साधु का दर्शन पुण्य है, आपको पूर्णत्व की ओर ले जायेगा। **‘तीर्थभूता हि साधवः’**— तीर्थ भूतकाल के साधु हैं। नानक जन्मे तो ननकाना, महावीर जन्मे तो तीर्थ, बुद्ध जन्मे तो तीर्थ, ऋषभदेव जहाँ जन्मे तो वह तीर्थ, और समुद्र के क्षेत्र में महापुरुष कपिल भगवान रहे तो तीरथ गंगासागर। कोई तीर्थ महात्मा को जन्म नहीं दे सकता है लेकिन महात्मा तीर्थ को जन्म देता है। **‘साधुनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता ही साधवः’**— भूतकाल के संत ही आज के तीर्थ हैं। **‘काले फलन्ति तीर्थानि’**— तीर्थ समय पाकर फल देता है, **‘सद्यः साधु समागमः’**— साधु का समागम तत्काल फल देता है। इसलिए जितने विद्वान बाहर पूजा करवाते हैं, एक ईश्वर को छोड़कर दाहिने-बायें पूजा करवाते हैं, सच पूछो तो गीता के अनुसार सब असुर हैं, सब अनन्त नरक के अधिकारी हैं।

हमारा कहना यही है कि गीता के विपरीत जो बतावे, क्या वे धर्मात्मा हैं? श्रीकृष्ण कहते हैं— वे धर्मात्मा नहीं हो सकते। वे असुर हैं। उनको बारम्बार अधोगति

देता हूँ। वेद पढ़ा, स्वर्ग का मुहाना देखा तब भी अनन्त जन्म-मृत्यु के चक्र ने पिण्ड नहीं छोड़ा। यज्ञ किया तब भी क्रूरकर्मी, पापाचारी, मनुष्यों में अधम। ऐसे लोगों को मैं बारम्बार आसुरी योनि में गिराता हूँ। मुझे न प्राप्त होकर वे कीट-पतंगपर्यन्त गिरते ही जाते हैं, घोर नरक में गिरते हैं। जो नरक में गिरते हैं, वे पापयोनि नहीं हैं क्या? यज्ञ किया, उछले-कूदे और नरक ने पिण्ड नहीं छोड़ा। भगवान कहते हैं— जो एक परमात्मा को छोड़कर अन्य-अन्य विधियों से भजते हैं, सब असुर हैं। भोली-भाली जनता का भी दोष नहीं है। वे करें क्या? आदिशास्त्र गीता उन्हें उपलब्ध ही नहीं है। उन्हीं विद्वानों ने कह रखा है कि गीता घर में रखो ही मत, नहीं तो लड़का साधु हो जायेगा। क्या ये भटके हुए सदा ऐसे ही रहेंगे? ऐसी बात नहीं है। जहाँ सत्पुरुषों का सान्निध्य मिला तो आसुरी सम्पद्वाले लौटकर दैवी सम्पद् में आ जायेंगे।

पहले हम वज्र नास्तिक थे, आस्तिक क्यों हो गये? गुरु महाराज को देख लिया, बस इतने से हम हो गये आस्तिक। ‘संत दरस जिमि पातक टरहीं।’ आस्तिकता का बीजारोपण— ‘गुरु को सिर पर राखिये, चलिये आज्ञा माहिं।’ आज्ञापालन ही भजन है।

**अज्ञानतिमिरांधश्च ज्ञानाञ्जनशलाकया।**

**चक्षुरुन्मीलितम् येन तस्मै श्री गुरवे नमः॥**

आज के प्रकरण ‘त्र्यम्बकं यजामहे’ का सम्बन्ध वेद से है। वेद प्राचीन ऋषियों की अनुभूतियों का संकलन है जिसके लिए भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—

**ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।**

**ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा॥ (गीता, 17/23)**

अर्जुन! ओम्, तत् और सत् — तीन प्रकार का परमात्मा का नाम है। ‘ब्रह्मणः निर्देशः स्मृतः’— ब्रह्म का निर्देश करता है, स्मृति दिलाता है, संकेत करता है और ब्रह्म का परिचायक है। उसी से पूर्व में यज्ञ, वेद और ब्राह्मण रचे गये। ओम्, तत् और सत् से यज्ञ, वेद और ब्राह्मण की रचना हुई है अर्थात् यज्ञ, वेद और ब्राह्मण ओम् से पैदा होते हैं। ये योगजन्य हैं। ओम् के सतत चिन्तन से ही इनकी उत्पत्ति होती है, अन्य कोई तरीका नहीं है।

ओम् माने वह अविनाशी परमात्मा, अहम् माने आप स्वयं! उन परमात्मा का निवास आपके हृदय-देश में है जिससे आप बाहर भटक न जायँ। ओम्, तत् और सत् के द्वारा यज्ञ की उत्पत्ति है। योगविधि यज्ञ है। साधन-पद्धति यज्ञ है। इस यज्ञ को क्रियान्वित करना ही गीता का नियत कर्म है। **‘यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः’**— यज्ञ के अतिरिक्त जो कुछ भी किया जाता है, वह इसी लोक का बन्धन कर्म है, इसी लोक में बाँधकर रखने का उपाय है। गीता, अध्याय 4 में यज्ञ का स्वरूप बताया गया है जिसकी एक निश्चित विधि है, जिसका आचरण यदि आप करेंगे तो आपमें वेद उतर आयेंगे। साधक के हृदय में भगवान के निर्देश उतरने लगते हैं, वही साधक के लिए वेद है। उस परमात्मा की अपौरुषेय वाणी का नाम वेद है। वेद अपौरुषेय हैं। वेद किसी पुस्तक का नाम नहीं है। जहाँ श्रद्धा के साथ आपका सम्बन्ध परमात्मा से जुड़ा, अपौरुषेय वाणी आने लगेगी। उन्हीं परमात्मा के संरक्षण में चलते हुए क्रमशः उन्नत स्तर पार करते हुए, जैसा गुणों का दबाव है, वैसा ही उनके निर्देशन में चलते हुए साधक वहीं पहुँच जाता है जहाँ परात्पर ब्रह्म है। सभी जिसके अंश हैं, साधना उन परमात्मा के सम्मुख आपको खड़ा कर देती है। उन्हें जानकर साधक भी वही हो जाता है, ब्रह्म में स्थित हो जाता है। अब वह ब्राह्मण है। ब्राह्मण एक स्थिति है। ओम् से ब्राह्मण की उत्पत्ति है, अन्य कोई तरीका नहीं है।

**‘प्रणवः सर्ववेदेषु’** (गीता, 7/8) का भी यही आशय है। अथर्ववेद के गोपथ ब्राह्मण के ऋषि गोपथ ने व्यवस्था दी है कि प्रत्येक वेदमंत्र के उच्चारण से पूर्व ‘ॐ’ का उच्चारण करना चाहिए जिससे एक परमात्मा की स्मृति बनी रहे। **‘यदक्षरं वेदविदो वदन्ति’** (गीता, 8/11)— वेद के ज्ञाता जिस परमात्मा को अविनाशी कहते हैं.... तात्पर्य यह कि वेद के सूक्त, ऋचायें, मंत्र – सभी एकमात्र परमात्मा की महिमा का ही गायन करते हैं किन्तु वेद की वर्णन-शैली ही इस प्रकार की है कि लोग फलश्रुति के वाक्यों में अनुरक्त होकर परमात्मा से पृथक् अन्य देवताओं का अस्तित्व मान बैठते हैं। यहीं से भ्रम का आरम्भ होता है।

वेद एकमात्र परमात्मा की महिमा का ही गायन करते हैं— **‘एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।’** (ऋग्वेद, 1/164/46)। यजुर्वेद (32/1) में है—

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तद् चन्द्रमा।

तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥

अर्थात् अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म, आप और प्रजापति इत्यादि नामों से निश्चय ही उसी एक परमात्मा का बोध होता है।

अथर्ववेद के तेरहवें काण्ड, चौथे सूक्त के 3-5 मंत्रों में है-

स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ उच्छ्रितम। (3)

सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेव। (4)

सो अग्नि, स उ सूर्यः स उ एव महायमः। (5)

अर्थात् वह धाता, विधाता और वही वायु है। वह अर्यमा, वरुण, रुद्र और महादेव है; अग्नि, सूर्य और महायम भी वही है।

बृहदारण्यक उपनिषद् (3/9/4) में वर्णन आता है कि विदेहराज जनक की सभा में ऋषि शाकल्य पूछते हैं- 'कतमे रुद्रा इति' अर्थात् रुद्र कौन हैं? याज्ञवल्क्य उत्तर देते हैं- 'दसेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादसस्ते' अर्थात् दस प्राण और ग्यारहवाँ आत्मा - यही एकादश रुद्र हैं।

शंकराचार्यजी के नाम से प्रचलित बृहदारण्यकोपनिषद् के भाष्य में है कि पुरुष के कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय दस प्राण हैं और ग्यारहवाँ आत्मा (मन) - ये ही ग्यारह रुद्र हैं। (शतपथ ब्राह्मण-ग्रन्थ में पाँच मुख्य प्राण- प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान; तथा पाँच उपप्राण- नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय - ये दस प्राण हैं, और ग्यारहवाँ जीवात्मा - ये ही एकादश रुद्र हैं।)

आगे बृहदारण्यक उपनिषद् में यह भी बताया गया कि इन्हें रुद्र इसलिए कहते हैं कि ये जिस समय मरणशील शरीर से निकलते हैं, अपने सम्बन्धियों को रुलाते हैं। रोदन का कारण होने से इन्हें रुद्र कहा जाता है।

कुछ भी हो, रुद्र जो भी हों, मानव-शरीर के भीतर हैं। अथर्ववेद (10/2/31) में मानव-शरीर को देवताओं की नगरी अयोध्या कहा गया है जिसमें आठ चक्र और नौ दरवाजे हैं। अथर्व (11/8/32) में है कि सभी देवता मानव-शरीर में उसी प्रकार रहते हैं जैसे गौवें गौशाला में रहती हैं।

यजुर्वेदीय ब्राह्मण ग्रन्थ शतपथ में है- 'आत्मा-इत्येव उपासीत अत्र ह्येते सर्व एकी भवन्ति' (14/4/2/18) अर्थात् आत्मा या परमात्मा की ही उपासना करनी चाहिए क्योंकि सारे देवता उस एक परमात्मा में विद्यमान हैं। जो अन्य देवताओं की उपासना करता है, वह देवताओं का पशु है- 'योऽन्यां देवतामुपास्ते, न स वेद, यथा पशुरेव स देवानाम्।' (शतपथ ब्राह्मण, 14/4/2/22)। अस्तु, रुद्र परमात्मा से अलग कोई देवता नहीं हैं, अपितु परमात्मा के एक अंग हैं और सम्पूर्ण परमात्मा की पूजा उसी विधि से करनी चाहिए जैसा आदिशास्त्र गीता में है।

रुद्राभिषेक के पहले मनोकामना सिद्धि संकल्प, पवित्री-धारण, तीन प्राणायाम, पूजा-सामग्री, रक्षा, दीप-प्रज्वलन, स्वस्ति-वाचन, गणेश-अम्बिका पूजन, कलश पूजन, शंख पूजन, घण्टा पूजन, दीप पूजन, षोडशोपचार पूजन, षडंग न्यास की विधि परवर्ती व्यवस्थाकारों की देन है। पाठ करने वाले कहते हैं कि विराट पुरुष के मुख से अग्नि और ब्राह्मण पैदा हुए हैं। अग्नि हवि से और ब्राह्मण दक्षिणा से संतुष्ट होते हैं इसलिए प्रभूत दक्षिणा देनी चाहिए (शतपथ ब्राह्मण, 2/2/2/6)। आयोजन के समापन पर नश्वर कलेवरों के नाम से स्वाहा के मंत्र बोलकर लोगों को भीरु और नास्तिक बनाया जाता है।

ऋग्वेद में रुद्र देवता से सम्बन्धित केवल तीन सूक्त हैं- मंडल एक का एक सौ चौदहवाँ सूक्त जिसमें ग्यारह मंत्र हैं, दूसरे मंडल का तैत्तिरीयवाँ सूत्र जिसकी पन्द्रह ऋचायें रुद्र के लिए हैं, तथा सातवें मंडल के छियालीसवें सूक्त की चार ऋचायें रुद्र की हैं। इस प्रकार ऋग्वेद में रुद्र का स्थान इन्द्र, वरुण और अग्नि की अपेक्षा बहुत ही कम महत्व का है परन्तु यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में रुद्र का महत्व बढ़ा हुआ है। यजुर्वेद में 66 मंत्रों का पूरा सोलहवाँ अध्याय रुद्राध्याय के नाम से प्रसिद्ध है। इसे शतरुद्रिय भी कहा जाता है क्योंकि इस अध्याय में शताधिक नामों द्वारा रुद्र की स्तुति की गयी है। महाभारत, द्रोण पर्व के अध्याय 202 में व्यास जी द्वारा अर्जुन से भगवान शिव की महिमा बताते हुए कहा गया है कि यजुर्वेद में भी शिव की शतरुद्रिय नामक उत्तम स्तुति की गयी है। 148वें श्लोक में व्यास जी ने कहा कि यहाँ (इस अध्याय में) उसी शतरुद्रिय की व्याख्या है। अथर्ववेद के ग्यारहवें काण्ड के द्वितीय सूक्त के 31 मंत्रों में रुद्र की स्तुति है।

वेदों में रुद्र का मनुष्य रूप में वर्णन है। उनका हाथ रोग दूर करके जीवन देनेवाला सुखकारक हाथ है। वे 'वज्रबाहो', 'तवसां तवस्तमः' अर्थात् बलवानों में सबसे अधिक बलवान है (ऋग्वेद, 2/33/3)। ऋग्वेद 2/23/4 में है- रुद्र! हम तुम्हें झूठे नमस्कारों से क्रोधित न करें। हम बनावटी स्तुतियों से भी तुम्हें क्रुद्ध न करें। वैसे वे ऋदूदरः अर्थात् मृदूदरः- कोमल हृदयवाले हैं। उनकी गर्दन नीले रंग की है किन्तु उनको शितिकण्ठ- शुभ्र कण्ठवाला कहा जाता है। इनके शिर पर बालों का जूड़ा है जिससे वे कपर्दी कहे जाते हैं। किन्तु कभी वे 'व्युप्तकेश' (शुक्ल यजुर्वेद, 16/28-29), मुण्डित केश, सहस्राक्ष, शतधन्वा और गिरीश हैं। अथर्ववेद 11/2/5-6 में रुद्र के अंगों- मुख, नेत्र, त्वचा, उदर, पीठ, जिह्वा और दाँतों को नमस्कार किया गया है। वे शिर पर पगड़ी धारण करते हैं ('उष्णीषी'; शुक्ल यजुर्वेद, 16/22)। उनका रंग भूरा ('बभ्रु'; शुक्ल यजुर्वेद, 16/6) है। वह उपवीत भी धारण करते हैं (शुक्ल यजुर्वेद, 16/17)।

रुद्र के हाथ में धनुष-बाण हैं। उनके धनुष का नाम 'पिनाक' (शुक्ल यजुर्वेद, 16/37) है। उनके प्रखर तीर हर दिशाओं में सदैव बरसते रहते हैं। रामचरितमानस में भगवान श्रीराम के धनुष-बाण का आध्यात्मिक रूपक बताया गया है-

**लव निमेष परमानु जुग बरष कल्प सर चंड।**

**भजसि न मन तेहि राम को काल जासु कोदण्ड॥** (लंकाकाण्ड, आरंभ)

रुद्र संहार के देवता है इसीलिए अथर्ववेद में उनका नाम शर्व है। वे मारण, हिंसन और विनाशन के कार्य धनुष-बाण, त्रिशूल और तीक्ष्ण तलवार के अतिरिक्त कुत्तों, गीदड़, भेड़ियों, गीध, मक्खियों, कौवों, विद्युत, अग्नि, ज्वर, क्षय रोग, काले और हिंसक विषाणुओं द्वारा करते हैं (अथर्ववेद, 13/11/2)।

रुद्र पशुपति हैं। अथर्व 11/2/9 में है कि वे पशु कौन हैं- 'तवे मे पंच पशवो विभक्ता गावो अश्वा पुरुषा अजायवः' अर्थात् रुद्र! पाँच पशु तेरे लिए रखे गये हैं- गाय, घोड़ा, पुरुष, बकरियाँ और भेंड़। संभवतः अथर्ववेद में देवता पूजनेवाले पुरुष को पशु श्रेणी में रखा गया है। रुद्र के लिए शुक्ल यजुर्वेद में है- 'पशूनां पतये नमः' (16/17), 'स्तेनानां पतये नमः' (16/20)- चोरों के स्वामी को नमस्कार, 'तस्कराणां



पतये नमः' (16/21)– डकैतों के स्वामी को नमस्कार, 'वंचते परिवंचते' (16/21)– ठगों के स्वामी को नमस्कार, 'नमो गणेभ्यो गणपतिभ्याम्'– गणों और गणपति को नमस्कार! ज्ञातव्य है कि यजुर्वेद में रुद्र को गणपति (16/25) कहा गया जबकि पुराणों ने उनके पुत्र गणेश को गणपति बना दिया। ऋग्वेद (2/23/1) में 'गणानां त्वा गणपतिह्वामहे' बृहस्पति देवता की स्तुति में कहा गया है जबकि आजकल इसे गणेश के आवाहन के लिए पढ़ते हैं।

ऋग्वेद में अम्बिका को रुद्र की बहन (स्वस्त्रा) कहा गया और 'आखुस्ते पशुः'– चूहे को रुद्र का पशु कहा गया (ऋग्वेद, 3/57) जबकि पुराणों में अम्बिका को रुद्र की पत्नी और चूहा उनके पुत्र गणेश का वाहन है। मानस में भी नारद जी हिमवान से पार्वती का परिचय देते हैं– '**नाम उमा अम्बिका भवानी।**' (मानस, 1/66/2)

रुद्राभिषेक में शुक्ल यजुर्वेद के कुछ मंत्र पढ़े जाते हैं। उन्हें संकलित कर अर्वाचीन कर्मकाण्डियों ने रुद्राष्टाध्यायी नामक पुस्तिका बनायी है। इस पुस्तिका में आठ अध्याय हैं। इसका संकलन कब और किसने किया?–अज्ञात है। इसके हिन्दी व्याख्याकार ने आरम्भ में ही वायुपुराण के नाम से एक श्लोक दिया है जिसका आशय है कि सुवर्णसहित सम्पूर्ण पृथ्वी दान देने से जितना पुण्य होता है, 'तस्मादप्यधिकं पुण्यं सकृद् रुद्रजपाद् भवेत्'–उससे भी अधिक पुण्य एक बार रुद्र-जप से होता है परन्तु इसकी व्याख्या करनेवाले ने लिखा है– 'उससे भी अधिक पुण्य रुद्राष्टाध्यायी के पाठ एवं रुद्राभिषेक का है।' स्पष्ट है कि वायुपुराण लिखे जाने तक रुद्राष्टाध्यायी का नामोनिशान नहीं था।

रुद्राष्टाध्यायी का पाँचवाँ अध्याय 'नमक' कहा जाता है क्योंकि शुक्ल यजुर्वेद के इस सोलहवें अध्याय के 66 मंत्रों में रुद्र के नामों के साथ 181 बार 'नमः' शब्द आया है। इसी प्रकार इसके आठवें अध्याय को 'चमक' कहा जाता है। इसमें शुक्ल यजुर्वेद के अठारहवें अध्याय के 77 में से आरम्भिक 29 मंत्र लिये गये हैं जिनमें 325 बार च मे, च मे शब्द आया है जैसे– ब्रीह्याश्च मे, यवाश्च मे, तिल्यंश्च मे, माखाश्च मे, मुंगदाश्च मे, श्यामकाश्च मे, गोधूमाश्च मे, मसूराश्च मे, यज्ञेन कल्पन्ताम् अर्थात् मेरे लिये धान (चावल), और मेरे लिये जौ, और मेरे लिए तिल, और मेरे लिए उदड़, और

मेरे लिए मूंग, और मेरे लिए सावाँ, और मेरे लिए गेहूँ, और मेरे लिए मसूर इस यज्ञ से बढ़े। प्रतीत होता है कि समृद्धि याचना के मंत्र प्रत्येक यज्ञ में पढ़े जाते रहे होंगे। रुद्र से इसका क्या लेना-देना?

उपर्युक्त दोनों अध्यायों को मिलाकर पढ़ने को रुद्री और ग्यारह बार पढ़ने को एकादशिनी कहा जाता है। एकादशिनी रुद्री की ग्यारह आवृत्ति लघु रुद्रीपाठ है जिसे ग्यारह ब्राह्मण एक दिन में कर लेते हैं। लघुरुद्री की ग्यारह आवृत्ति अर्थात् रुद्री का 121 पाठ होने पर महारुद्री पूरा होता है। ब्राह्मणों की संख्या 121 होने पर यह एक दिन में भी हो सकता है। ग्यारह बार महारुद्री अर्थात् एकादशिनी रुद्री की 121 आवृत्ति अर्थात् 1331 बार रुद्री पाठ को अतिरुद्री कहते हैं। अधिकस्य अधिकं फलम्....।

रुद्राष्टाध्यायी के आठ अध्यायों में पहला अध्याय नौ मंत्रों का है जो शुक्ल यजुर्वेद के तेईसवें अध्याय के उन्नीसवें मंत्र 'गणानां त्वा गणपतिह्वामहे' गणेश-वन्दना से आरम्भ होता है (जबकि यह मंत्र अश्वमेध यज्ञ में राजा की मुख्य रानी द्वारा अश्वमेध में छोड़े गये अश्व से गर्भधारण कराने की प्रार्थना है)। इसके अन्य 7 मंत्र चौतीसवें अध्याय से हैं जिनमें है— 'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु' कि मेरा मन शुभ संकल्पवाला हो। इस अध्याय में रुद्र शब्द नहीं है।

दूसरा अध्याय ऋग्वेद का प्रसिद्ध पुरुषसूक्त है (10/90/1-16)। यजुर्वेद के इकतीसवें अध्याय के पुरुष सूक्त में 22 मंत्र हैं। अथर्ववेद के आठवें काण्ड के छठें सूत्र में पुरुषसूक्त 16 मंत्रों में और सामवेद पूर्वाचिक षष्ठम प्रपाठक, द्वितीयार्ध, चतुर्थ दशति के 3 से 7 मंत्र तक कुल 5 मंत्र हैं जिनमें विराट पुरुष परमात्मा द्वारा सृष्टि का विवरण है। इस सूक्त में रुद्र का नाम कहीं नहीं है।

इसके तीसरे अध्याय में शुक्ल यजुर्वेद के सत्रहवें अध्याय के 99 मंत्रों में से 33 से 49 तक के 17 मंत्रों में इन्द्र की स्तुति है। इन मंत्रों में रुद्र का नाम नहीं है।

रुद्राष्टाध्यायी के चौथे अध्याय में शुक्ल यजुर्वेद के तैंतीसवें अध्याय के 30 से 43 कुल 14 मंत्र सूर्य की स्तुति है। इनमें भी रुद्र का नाम नहीं है।

पाँचवाँ सम्पूर्ण अध्याय (नमक) यजुर्वेद का सोलहवाँ अध्याय है। यही एकमात्र रुद्राध्याय है।

छठें अध्याय में शुक्ल यजुर्वेद के तीसरे अध्याय के 57 से 63 तक केवल सात मंत्र रुद्र के हैं जिसमें रुद्र, अम्बिका को यज्ञ का भाग दिया गया है जिससे वे प्रसन्न हों।

रुद्राष्टाध्यायी के सातवें अध्याय में यजुर्वेद के उन्तालीसवें अध्याय के 7 से 13 कुल सात मंत्र विभिन्न देवताओं को आहुति देने के मंत्र हैं, जैसे- यमाय स्वाहा..., अन्तकाय स्वाहा..., मृत्यवे स्वाहा..., विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा...।

आठवाँ चमक नामक अध्याय में यजुर्वेद के अठारहवें अध्याय के 77 मंत्रों में से आरंभ के 29 मंत्र हैं। इस अध्याय में भी रुद्र के नाम से कोई स्तुति नहीं है।

अन्त में शान्ति पाठ में यजुर्वेद के छत्तीसवें अध्याय के 24 मंत्र हैं जिसमें सर्वत्र शान्ति की कामना है, जैसे- **द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।** (36/17)

स्पष्ट है कि शुक्ल यजुर्वेद से एक अध्याय (16वाँ) और तीसरे का सात मंत्र लेकर उसमें पुरुषसूक्त, सूर्यसूक्त और इन्द्र की स्तुति जोड़कर रुद्र के नाम पर आठ अध्याय बना दिया गया है। पाँचवें और छठें अध्याय को छोड़कर शेष छः अध्यायों में रुद्र नाम तक नहीं है और नाम रख दिया रुद्राष्टाध्यायी।

कृष्ण यजुर्वेदीय कैवल्योपनिषद् की गीता प्रेस गोरखपुर की हिन्दी व्याख्या में है कि जो शतरुद्रिय का पाठ करता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है इसलिए जो आश्रम से अतीत हो गये हैं उन परमहंसों को सदा सर्वदा अथवा कम से कम एक बार इसका पाठ अवश्य करना चाहिए। इससे उस ज्ञान की प्राप्ति होती है जो भवसागर का नाश कर देता है। प्रतीत होता है कि परमहंस शब्द हिन्दी-व्याख्याकार ने अपने मन से अनावश्यक रूप से जोड़ दिया है। मूलपाठ 'यः शतरुद्रियमधीते सोऽग्निपूतो भवति स वायुपूतो भवति स आत्मपूतो भवति स सुरापानात्पूतो भवति स ब्रह्महत्यायाः पूतो भवति स सुवर्णस्तेयात्पूतो भवति स कृत्याकृत्यात्पूतो भवति तस्मादविमुक्तमाश्रितो भवत्यित्याश्रमी सर्वदा सकृद्वा जपेत्।' (कैवल्योपनिषद्, 24) में परमहंस शब्द नहीं है। यह भी प्रतीत होता है कि उपर्युक्त सामग्री कैवल्योपनिषद् की समाप्ति पर किसी ने बाद में जोड़ दिया है क्योंकि इस उपनिषद् के आरम्भ में ही महर्षि आश्वलायन की प्रार्थना पर ब्रह्मा जी

ने कहा कि तुम परात्पर ब्रह्म को श्रद्धा, भक्ति, ध्यान और योग द्वारा जानने का यत्न करो। स्नानादि से शुद्ध होकर एकांत स्थान में सुख से बैठकर, ग्रीवा-सिर और शरीर को सीधा रखकर सारी इन्द्रियों का निरोध करके भक्तिपूर्वक अपने गुरु को प्रणाम कर संन्यास आश्रम में स्थित योगी लोग अपने हृदय कमल में आत्मतत्व का चिन्तन करते हैं। उमा अर्थात् ब्रह्मविद्या और नीलकण्ठ महादेव अर्थात् परात्पर परब्रह्म को मुनिलोग ध्यान द्वारा प्राप्त करते हैं। त्याग, तपस्या, संयम, एकांत और ध्यान का उपदेश देनेवाला यह उपनिषद् अंत में कैसे कह सकता है कि शतरुद्रिय के पाठ से मुक्ति मिल जायेगी?

आश्रमों से अतीत परमहंस साधना की अत्युच्च स्थिति है, परमात्मा के तद्रूप होने की स्थिति है। जिसने माता-पिता-स्त्री-पुत्र-पौत्र इत्यादि गृहगत संस्कारों का उच्छेद कर दिया हो, सृष्टि में उनका कोई शत्रु होता ही नहीं, ऐसे परमहंस क्या प्रार्थना कर सकते हैं कि हे रुद्र! मेरे शत्रुओं को मारें अथवा 'मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्। मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रीरिषः।।' अर्थात् हे रुद्र! हमारे वयोवृद्ध लोगों को मत मारो और हमारे बालकों को मत मारो, हमारे तरुण पुरुषों को मत मारो, गर्भस्थ बालकों को मत मारो, हमारे पिता को मत मारो, हमारी माता को मत मारो और हमारे प्रिय पुत्र-पौत्रादि को मत मारो (शुक्ल यजुर्वेद, 16/15); 'मा नो गोषुः मा नो अश्वेषु रीरिषः।' अर्थात् हमारी गौवों, हमारे घोड़ों को मत मारो। (शुक्ल यजुर्वेद, 16/16)

अभिषेक पर भी विचार कर लेते हैं। अभिषेक का शाब्दिक अर्थ होता है— जल छिड़कना, धार्मिक स्नान कराना। जलहरी द्वारा थोड़ा-थोड़ा जल गिराना अभिषेक कहलाता है। कहते हैं— "जल से रुद्राभिषेक करने पर वृष्टि होती है। पशु-प्राप्ति के लिए दही से, लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए गन्ने के रस से, वैभव और ऐश्वर्य के लिए मधु एवं घृत से, मोक्ष-प्राप्ति के लिए तीर्थ के जल से, पुत्र की कामना पर दूध से अभिषेक करना चाहिए। एक हजार मंत्रों द्वारा घृत की धारा से रुद्राभिषेक करने पर वंश का विस्तार होता है। बुद्धि की जड़ता को दूर करने के लिए शक्कर मिले दूध से, सरसों के तेल से अभिषेक करने पर शत्रु का विनाश होता है। पाप-क्षय की इच्छावाले को मधु से, दीर्घ आयु की इच्छा करने वाले को गो-दुग्ध से और आरोग्य की इच्छावाले को घृत से अभिषेक करना चाहिए।" अब इन व्यवस्थाओं को क्या कहा जाय? भगवान श्रीकृष्ण

कहते हैं- 'बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्ध्योऽव्यवसायिनाम्' (गीता, 2/47)- अविवेकियों की बुद्धि अनन्त शाखाओंवाली होती है। अनन्त कामनाओं की पूर्ति के लिये वे अनन्त क्रियाओं को गढ़ते ही रहते हैं।

अब हम उस मंत्र पर आते हैं जिसे महामृत्युंजय कहा जाता है-

**त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।**

**उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥**

यह ऋचा सर्वप्रथम ऋग्वेद 7/59/12 में है। वही ज्यों-की-त्यों यजुर्वेद 3/60 में है। ऊपर के मंत्र में थोड़ा और जोड़ दिया गया है। पूरा मंत्र इस प्रकार है जो रुद्राष्टाध्यायी के छठें अध्याय में है-

**त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।**

**उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।**

**त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्।**

**उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः॥** (शुक्ल यजुर्वेद, 3/60)

इसका अर्थ जैसा लोग बताते हैं कि 'सुगन्धिम्'- सुगन्धयुक्त, 'पुष्टिवर्धनम्'- पुष्टिवर्धक, 'त्र्यम्बकम्'- तीन नेत्रवाले रुद्र का 'यजामहे'- हम यजन करते हैं। 'उर्वारुकमिव'- ककड़ी या खरबूजे की तरह जैसे वह लता के बंधन से भली प्रकार मुक्त हो जाता है, उसमें नहीं बँध सकता, उसी प्रकार विषय-लता से मुक्त होकर 'मृत्योः बन्धनात् मुक्षीय'- मृत्यु के बन्धन से हमें मुक्त कीजिए। 'अमृतात् मा'- अमरत्व से हमें वियुक्त न करें।

मंत्र के उत्तरार्ध में है- 'पतिवेदनम्'। आजकल प्रचलित रुद्राष्टाध्यायी में इसका अर्थ दिया गया है- पति की प्राप्ति करानेवाले, सुगन्धि और पुष्टिवर्धक रुद्र का हम यजन करते हैं। ककड़ी के फल की तरह 'इत बन्धनात्' अर्थात् यहाँ पिता के घर के बन्धन से मुक्त कीजिए, 'मामुतः'- वहाँ अर्थात् पति के घर से मेरा सम्बन्ध कभी न छूटे। (हमारे विचार से इसका अर्थ होना चाहिए- पतिवेदनम्'- सबका पति एकमात्र परमात्मा है जिसे हमें 'वेद' अर्थात् विदित कर लें। इस संसार-बंधन से हमें मुक्त करें, 'मामुतः'- वहाँ अर्थात् पति परमात्मा के घर से मेरा सम्बन्ध कभी न छूटे।)

इस प्रकार आज के विद्वानों के अनुसार मंत्र का आधा भाग मृत्युंजय मंत्र और शेष आधा भाग कुमारी कन्याओं के लिए है जो विवाह करना चाहती हैं। कहा जाता है, इस मंत्र का जप मार्कण्डेय जी ने किया था। पता नहीं, उन्होंने पूरा मंत्र पढ़ा था या आधे से ही काम चल गया? मार्कण्डेय जी की कथा इस प्रकार है—

बहुत समय पहले ऋषि मृकण्डु पुत्र-प्राप्ति के लिए हिमालय पर भगवान शंकर की आराधना कर रहे थे। भगवान प्रसन्न हुए तो पूछा— तुम्हें दुर्गुणी सौ पुत्र चाहिए या गुणवान एक? ऋषि ने एक गुणवान पुत्र माँगा। भोलेनाथ ने कहा— किन्तु उसकी आयु केवल बारह वर्ष होगी। ऋषि ने कहा— प्रभो! दुर्गुणी से तो वह अच्छा ही रहेगा।

भगवान के आशीर्वाद से उत्पन्न पुत्र मार्कण्डेय इतने बुद्धिमान थे कि ग्यारह वर्ष में ही पारगामी विद्वान हो गये। अन्तःकरण की विद्या जागृत होने लगी। जब पिता ने देखा कि अब इसकी आयु केवल एक वर्ष शेष है तब उन्होंने उनसे कहा— वत्स! तुम्हारी आयु केवल बारह वर्ष है। अब उसका केवल एक वर्ष ही शेष है। लड़के ने कहा— पिताजी! यह तो मेरे संस्कारों का ही फल है जो इतनी ही आयु है। आप चिन्तित न हो क्योंकि इसमें आप कुछ कर भी तो नहीं सकते। आप मेरी मृत्यु टाल नहीं सकते। इसका उपाय तो मुझे ही करना होगा। ‘**कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके**’—मनुष्य योनि में कर्मों के अनुसार बन्धन तैयार होता है। अनन्त योनियाँ केवल भोग भोगने के लिए होती हैं, कर्म करके नवीन संरचना नहीं कर सकते लेकिन मनुष्य कर्मों का निर्माता है। मैं स्वयं भजन का अभ्यास करूँगा, तपस्या करूँगा और अपने मृत्यु को जीवन में बदलने का प्रयास करूँगा। पिता से आज्ञा लेकर मार्कण्डेय जी एकान्त जंगल में पुष्पभद्रा नदी के किनारे कुटिया बनाकर शंकर जी की आराधना में लग गये, शिवलिंग के पास बैठकर।

लिंग का अर्थ है चिह्न। स्त्रीलिंग— जिनमें स्त्रियों के चिह्न हो, पुल्लिंग— जिनमें पुरुष के चिह्न पाये जाते हैं, उभयलिंग— जिसमें स्त्री-पुरुष दोनों के चिह्न पाये जाते हों, नपुंसकलिंग— जिसमें नपुंसक के चिह्न पाये जाते हैं, और शिव का ज्योतिर्लिंग— यह ज्योतिर्मय परमात्मा का चिह्न है, प्रतीक है। कैसी ज्योति? सूर्य की? नहीं। चन्द्रमा की? नहीं। अग्नि की? नहीं,

**न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।**

**यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्भाम परमं मम॥ (गीता, 15/6)**

उस परमात्मा को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा प्रकाशित कर सकता है और न अग्नि ही प्रकाशित करती है। वह सहज प्रकाशस्वरूप है। परमात्मा ज्योतिर्मय है। मार्कण्डेय एक ज्योतिर्मय परमात्मा में सुरत स्थिर करके लग गये।

जनश्रुति है कि वह वर्षभर लगातार प्रार्थना करते रहे- ‘ॐ त्र्यम्बकं यजामहे...’- ओम् शब्द से उच्चरित... ओ माने वह अविनाशी परमात्मा, अहम् माने आप स्वयं... जिनका निवास आपके हृदय-देश में है। यदि आप वैष्णवी देवी जपेंगे तो उनका दर्शन करने पहाड़ पर जम्मू जाना पड़ेगा; मुम्बा देवी भजेंगे तो भाग जायेंगे मुम्बई महानगर; विन्ध्यवासिनी जपेंगे तो देखने लगेंगे मीरजापुर; किन्तु ओम् जपेंगे तो? ओम् की मूर्ति या मंदिर दुनिया में कहीं नहीं है। ओम् अर्थात् वह अविनाशी ज्योतिर्मय परमात्मा। वह रहते कहाँ हैं? ‘हृदि सर्वस्य विष्ठितम्’- सबके हृदय में समाविष्ट होकर सदा निवास करते हैं। अस्तु, ओम् शब्द से उच्चरित प्रभो! ‘त्र्यम्बकम्’- सत्, रज, तम त्रिगुणमयी प्रकृति है जो आपका संकेत पाकर सृजन, पालन और संहार करती है - इस त्रिगुणमयी प्रकृति का निरोध और अन्त करनेवाले प्रभो! मैं आपका पूजन करता हूँ, यजन करता हूँ-‘यजामहे’। ‘सुगन्धिम् पुष्टिवर्धनम्’- मुझे अपनी सुगन्ध दें, जो मृत्यु हमारा पीछा कर रही है, कोई न कोई कुसंस्कार है, कोई दुर्गन्ध है, यह दुर्गन्ध मिट जाय, शाश्वत परमात्मा की गंध प्रसारित हो जाय, जिससे ‘पुष्टिवर्धनम्’- मैं परिपुष्ट हो जाऊँ। सांसारिक लोग इसका अर्थ लिखते हैं कि भगवन्! रोटी-दाल, ऐसा अन्न दीजिए जिससे शरीर हृष्ट-पुष्ट हो जाय। ऐसा नहीं है। सुगन्धि है दैवी सम्पद् में, ब्रह्म-विद्या में। आत्मिक सम्पद् जो आत्मपर्यन्त दूरी तय कराती है, उसका अनुसरण करनेवाला भगवान की सम्पूर्ण खुशबू पा जाता है। दुर्गन्ध है अविद्या, जिसको कहते हैं आसुरी सम्पद्। दैवी सम्पद् ‘विमोक्षाय’- परम कल्याण के लिए है। आसुरी सम्पद् अधोगति और नीच योनियों में फेंकने के लिए है जहाँ मृत्यु पीछा करती रहती है। इस आसुरी सम्पद् से छुड़ाकर मुझे दैवी सम्पद् से सुगन्धयुक्त करें। सुगन्ध अर्थात् शुभ परमात्मा की गंध प्रसारित करें जिससे ‘पुष्टिवर्धनम्’- जो मेरी मृत्यु का कारण है, वह समाप्त हो जाय, मैं पुष्ट हो जाऊँ। मेरे काल का अन्त हो, पुष्टि का वर्धन हो।

‘उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय’ अर्थात् ककड़ी के फल के समान मृत्यु के बंधन से हमें मुक्त करें। ककड़ी का फल पकने पर वृक्ष के बंधन से अनायास मुक्त हो

जाता है। उसमें स्वतन्त्र वृक्ष बनकर अपने में से नये फल उत्पन्न करने की शक्ति आ जाती है इसलिए वे स्वतन्त्र अर्थात् मुक्त किये जाते हैं। किन्तु ककड़ी या कोई भी फल बन्धन से सदा के लिए मुक्त नहीं होते। वे पुनः पैदा होते, बन्धनमुक्त होते और पुनः पैदा होते रहते हैं। मोक्ष वह है जब पुनः जन्म न हो, जन्म-मरण के संस्कार सदा के लिए मिट जायँ इसलिए इसका वास्तविक अर्थ अन्य ही है। इर्वारु या उर्वारुक ककड़ी को कहते हैं। उर हृदय को भी कहते हैं। इसका लाक्षणिक अर्थ है कि हमारी वृत्ति जो बाहर संसार में भटक रही है, वह सिमटकर उर में, आपके चरणों में लग जाय जिससे मैं भव-बन्धन से, मृत्यु देनेवाले संस्कारों से मुक्त हो जाऊँ; 'माऽमृतात्'— अपने अमृतत्व से मुझे दूर न करें।

मार्कण्डेय जी जंगल में अकेले ही बैठकर यह मंत्र पढ़ते रहे। वहाँ जंगल में ब्राह्मण कहाँ मिलते रुद्री पढ़ने के लिए? तुम पढ़ो और मुक्ति हमें मिल जाय— ऐसा नहीं होता। 'आपन करनी पार उतरनी।', 'करे आपके, माई के न बाप के।' आजकल लोग एक-दो दिन पढ़ लेते हैं या पाठ करा लेते हैं और मान लेते हैं कि उनका काम हो जायेगा।

वर्ष के अंत में यमराज आये। मार्कण्डेय जी भगवान की आराधना में लगे रहे। वस्तुतः मृत्यु से बचने का उपाय है भगवान शिव की शरण। शिव आदि सद्गुरु थे। यदि सद्गुरु आपको उपलब्ध नहीं हैं तो भगवान भी आपके लिए कुछ नहीं कर सकते। 'सिव पद कमल जिन्हिं रति नाहीं। रामहिं ते सपनेहुँ न सुहाहीं॥'— शिव के चरण-कमलों में जिनको प्रीति नहीं, राम को वे स्वप्न में भी अच्छे नहीं लगते। 'बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू। राम भगत कर लच्छन एहू॥'— जो विश्व के नाथ हैं उन भगवान शिव के चरणों में प्रीति – रामभक्तों ये यही लक्षण हैं। प्रीति शिव के चरणों में और भक्ति पूरी हो गयी भगवान की। बात क्या है? वस्तुतः शिव हैं योगेश्वर, महासद्गुरु। आप ज्यों-ज्यों सद्गुरु का स्वरूप पकड़ेंगे, हृदय में स्थित आपकी आत्मा जागृत होती जायेगी। भगवान को पाने का यही तरीका है। वे कृपा न करें तो भजन जागृत ही नहीं होता। और भजन जागृत हो गया तो भगवान काल से भी बचा लेते हैं। भगवान शिव के त्रिशूल ने यमराज को भगा दिया। मार्कण्डेय की मृत्यु टल गयी, वह चिरंजीवी हो गये— 'काल न खाय कल्प नहीं ब्यापै, देह जरा नहीं छीजै।'



समाज में मान्यता है कि प्रलय में सब कुछ समाप्त हो जाता है, सभी की मृत्यु हो जाती है। सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय के प्रश्न को मानव समाज ने कौतूहल से देखा है। विश्व के अनेक शास्त्रों ने इसे किसी-न-किसी तरह समझाने का प्रयास किया है। और प्रयास चला आ रहा है। कोई कहता है कि प्रलय में संसार डूब जाता है, तो किसी के अनुसार सूर्य इतना नीचे आ जाता है कि पृथ्वी जल जाती है, तो कोई इसी को कयामत कहता है कि इसी दिन सबका भाग्य, तकदीर का फैसला सुनाया जाता है, तो कोई नित्य प्रलय, नैमित्तिक प्रलय की गणना में व्यस्त है। किन्तु योगेश्वर श्रीकृष्ण के अनुसार सृष्टि अनादि है, परिवर्तन होते रहते हैं किन्तु यह नष्ट कभी नहीं हुई।

भारतीय धर्मग्रन्थों के अनुसार मनु महाराज ने प्रलय देखा था। नाव में उनके साथ अत्रि इत्यादि सप्त ऋषि और भृगु, नारद इत्यादि ग्यारह ऋषि थे। जल-प्लावन में एक विशालकाय मछली दिखाई पड़ी, उसके ऊपर सींग दिखाई पड़ा। आवाज आयी- मनु! अपनी नाव सींग में बाँध दो। उताल तरंगों को चीरते हुए वह मत्स्य सौ साल तक चलता रहा। उस महाप्रलय को पार करके उन सबने हिमालय की चोटी पर शरण ली।

भागवत के द्वादश स्कन्ध के आठवें और नौवें अध्याय के अनुसार शौनकादि ऋषि ने सूतजी से पूछा कि मार्कण्डेय जी ने महाप्रलय में वट के पत्ते पर भगवान बालमुकुन्द के दर्शन किये थे, किन्तु वे तो हमारे ही वंश के थे, हमसे कुछ ही समय पूर्व हुए थे। मार्कण्डेय जी के जन्म के बाद न तो कोई प्रलय हुआ और न कोई सृष्टि डूबी, सब कुछ यथावत् है तब उन्होंने कैसा प्रलय देखा?

सूत जी ने बताया कि मार्कण्डेय जी की प्रार्थना से प्रसन्न होकर भगवान नर-नारायण ने उन्हें दर्शन दिया। मार्कण्डेय जी ने कहा कि मैं आपकी वह माया देखना चाहता हूँ जिससे प्रेरित होकर यह आत्मा अनन्त योनियों में भ्रमण करता है। भगवान ने स्वीकार कर लिया।

एक दिन जब मुनि अपने आश्रम में भगवान के चिन्तन में तन्मय होकर बैठे थे तब उन्हें दिखाई पड़ा कि चारो ओर से समुद्र उमड़कर उनके ऊपर आ रहा है। उसमें मगर छलांगे लगा रहे थे। उसकी चपेट में ऋषि मार्कण्डेय भी आ रहे थे। वे इधर-उधर बचने के लिए भाग रहे थे। आकाश डूब गया, सूर्य डूब गया, पृथ्वी डूब गयी, चन्द्रमा

डूब गया, स्वर्ग डूब गया, ज्योतिष्मण्डल सभी उस समुद्र में डूब गये। इतने में मार्कण्डेय जी को एक बरगद का पेड़ और उसके पत्ते पर एक शिशु दिखाई दिया। शिशु के श्वास के साथ मार्कण्डेय जी भी उस शिशु के उदर में चले गये और अपना आश्रम, सूर्यमण्डल सहित सृष्टि को जीवित पाया और जहाँ शान्त होकर बैठे ही थे कि पुनः प्रश्वास के साथ उस शिशु के उदर से वे बाहर आ गये। नेत्र खुलने पर मार्कण्डेय जी ने अपने को उसी आश्रम में अपने ही आसन पर बैठा पाया। स्पष्ट है कि अनवरत भजन के पश्चात् उन मुनि ने ईश्वरीय दृश्य अपने हृदय में देखा, अनुभव में देखा। बाहर संसार में सब कुछ ज्यों-का-त्यों था। अतः प्रलय योगी के हृदय में ईश्वर से मिलनेवाली अनुभूति है। भजन के पूर्तिकाल में योगी के हृदय में संसार का प्रवाह मिटकर अव्यक्त परमात्मा ही शेष बचता है, इसी का नाम प्रलय है। बाहर सृष्टि यथावत् रहती है। बाहर प्रलय कभी होता ही नहीं। महाप्रलय शरीर रहते ही अद्वैत की अनिर्वचनीय स्थिति है। यह क्रियात्मक है।

मार्कण्डेय ऋषि को यह स्थिति भजन से मिली थी। उन्होंने वट-वृक्ष के पत्ते पर भगवान बालमुकुन्द का दर्शन किया था। भगवान का रूप— **‘बालक रूप राम कर ध्याना। दीन्ह मोहि गुरु कृपाँ निधाना॥’** सनकादिक ऋषि बालकरूप थे— **‘देखत बालक बहु कालीना।’** देखने में वे बालक थे किन्तु बहुत काल के थे। यहाँ ब्रह्म ही वट है। वृक्ष के जिस कोपल पर हम हैं, जब भजन करेंगे उसी बालक रूप को देखेंगे। आत्मदर्शन, स्पर्श और स्थिति के साथ ही सृष्टि लय हो जाती है और शेष बचता है **‘बालक रूप राम कर ध्याना।’** सभी इसको पा सकते हैं। **‘सो केवल भगतन हित लागी। परम कृपाल प्रनत अनुरागी॥’** भगवान परम कृपालु हैं, शरणागत पर परम अनुराग रखने वाले हैं इसलिए भजन करो, प्रलय भी आपको मिलेगा, महाप्रलय भी मिलेगा और शिशुरूप भगवान को (सद्गुरु को) आप हृदय में बैठे पाओगे और आप भी महर्षि मार्कण्डेय की तरह मृत्युंजयी, अजर, अमर हो जाओगे।

आजकल लोग मंत्र पढ़कर जीवन दे रहे हैं, मुक्ति दे रहे हैं। ये भीख क्यों माँग रहे हैं? उनके बाल-बच्चे, माता-पिता क्यों मर जाते हैं? मृत्युंजय मंत्र पढ़ क्यों नहीं देते? मृत्युंजय आपको पढ़ना है, प्रार्थना आपको करनी है। एक दिन पाठ कराने से बचने का

उपाय तर्कसंगत नहीं है। निरन्तर सेवा, शरण, सान्निध्य और उपासना से काल जीवन में और दुःख सुख में बदल जाता है। प्रह्लाद के सामने मृत्यु आयी, दुःख आये किन्तु अन्त में विजय प्रह्लाद की हुई।

प्रह्लाद के पिता हिरण्यकश्यप एक दिन उस गुरुकुल में गये जहाँ प्रह्लाद पढ़ते थे। वहाँ प्रह्लाद पाठशाला के बच्चों के साथ भगवान का संकीर्तन कर रहे थे। हिरण्यकश्यप ने कहा— बन्द करो ये सब। बोलो, मैं भगवान हूँ। प्रह्लाद ने कहा— पिताजी! भगवान की कृपा से आप इतने ऊँचे पद पर विराजमान हैं। भगवान तो योगेश्वर हैं। कण-कण में व्याप्त होने से उनका एक नाम है विष्णु। हिरण्यकश्यप बोले— भगाओ इसको यहाँ से, यह मेरे प्रबल शत्रु का नाम लेता है।

हिरण्यकश्यप के गुरु शुक्राचार्य के दो लड़के शण्ड और अमर्क प्रह्लाद के शिक्षक थे। शुक्राचार्य जितना वे भी जानते थे। उन्होंने कहा— राजन्! आप निश्चिन्त रहिये। हम मंत्र पढ़कर प्रह्लाद को मार डालेंगे। उन्होंने प्रह्लाद को मारने के लिए कृत्या का आवाहन किया। वह मारक यक्षिणी प्रह्लाद को मारने चली। प्रह्लाद ने कोई प्रतिकार नहीं किया किन्तु उस यक्षिणी को प्रह्लाद की रक्षा करता हुआ एक चक्र दिखाई पड़ा। प्रह्लाद को भी नहीं मालूम था कि हमारी रक्षा में भगवान खड़े हैं। चक्र के तेज से भयभीत होकर यक्षिणी वापस भागी किन्तु चक्र ने उस कृत्या और शण्ड, अमर्क का गला काट दिया। शुक्राचार्य रोने लगे। वे संसार के किसी भी अस्त्र-शस्त्र से मरे हुए को जिला सकते थे लेकिन भगवान के चक्र से मरे हुए अपने पुत्रों को शुक्राचार्य भी नहीं जिला सके। प्रह्लाद ने देखा तो गुरुजनों का चरण स्पर्श किया, सिर पर हाथ फेरा और कहने लगे— प्रभो! मैं गुरु का हत्यारा कहलाऊँगा, मैं कितना नीच और अभागा हूँ! प्रभो! हमारे सिर से यह कलंक हटा दें। हमारे गुरुजी लोग जी जायँ। वे दोनों जी गये। शुक्राचार्य दौड़े— बेटा शण्ड, बेटा अमर्क! दोनों बोले— अब हम आपके बेटे नहीं हैं। आपके बेटे तो मर गये। अब हम भक्त प्रह्लाद के शिष्य हैं। उन्होंने हमें जीवनदान दिया है। यह है वास्तविक मृत्युंजय।

**जो पै कृपा रघुपति कृपालु की, बैर और के कहा सरै।**

**होय न बांको बाल भगत को, जो कोई कोटि उपाय करै॥ (विनयपत्रिका)**

भगवान का नाम और उनका चिन्तन ही काल से बचा सकता है। आपके संस्कार को कोई पाठ करके काट दे, घी-दूध या जल से अभिषेक कराकर, बेलपत्र या भांग-धतूरा चढ़ाकर काट दे, ऐसा नहीं होता।

हाँ, महापुरुष चाहें तो काट सकते हैं। हमारे गुरु महाराज में यह क्षमता थी। वह कहते थे- “किसी को कल फाँसी होनी है, आज हम छड़ी मार दें तो उसे फाँसी न होई, सजा चाहे जो हो जाय।” यह प्रत्यक्ष प्रमाण कई बार देखने को मिला। एक बार हम बीमार पड़े। जंगल में डॉक्टर-वैद्य तो होते ही नहीं। हल्दी-दूध पियो और अदरक का काढ़ा। और है ही क्या? पन्द्रह उपवास हो गया, शरीर ठठरी हो गया। फिर इतना दबाव पड़ा कि बेहोश हो जाते थे। बीमारी की अर्द्धबेहोशी दशा में चार दोस्त दिखाई पड़े। हम सोये नहीं, जाग रहे थे। वे पक्के दोस्त थे। वे आये, बोले- तुम यहाँ हो! हम उठकर खड़े हो गये, हाथ मिलाया। हमने कहा- तुमलोग भी चले आये, कैसे हो? उन सबने कहा- चलो, जंगल घूम आये।

एक शस्त्रागार जिसमें लगभग पन्द्रह फीट लम्बा, पन्द्रह फीट चौड़ा द्वार था। हमलोगों को देखते ही वह द्वार खुल गया। सौ फीट लम्बा रहा होगा शस्त्रागार। उसमें बीच में मेज रखी थी और अस्त्र-शस्त्र चारो ओर टंगे हुए थे। एक इंच भी जगह खाली नहीं थी जहाँ अस्त्र-शस्त्र न हो। उन अस्त्र-शस्त्रों की चमक से इतना प्रकाश हो रहा है कि जैसे सैकड़ों ट्यूबलाइट जलती हों... चकाचौंध... जब हमलोग उसके अंदर गये तो उन पक्के मित्रों ने एक-एक अस्त्र चारो कोनों से निकाल लिये। वे आपस में कहने लगे- काट डालो, देखते क्या हो! हम बोले- इनसे माफी माँगने से ये देंगे नहीं। कौन ऐसा उपाय है कि जिससे इस बार बच जायँ और फिर हम इतना भजन करेंगे कि इनकी पकड़ से आगे बढ़ जायेंगे, फिर ये हमें नहीं पकड़ पायेंगे। कौन उपाय है जिससे हम बच जायँ? मन में एक उपाय दिखाई पड़ा। हम ॐ का जप करने लगे। हमने उनसे कहा- बस एक अवसर मिले, बस केवल एक बार छोड़ दो। वे नहीं छोड़ रहे थे। वे आगे बढ़ रहे थे चारो तरफ से। हम सोच रहे थे कि एक बार बच जायेंगे तो इतना भजन करेंगे कि इनकी पहुँच से दूर हो जायेंगे। हम बच जायेंगे, हमारे ये संस्कार कट जायेंगे। हम बोले- केवल एक बार। लेकिन वे आगे बढ़ते रहे। इतने में शस्त्रागार फटकर दूर

चला गया और हम हो गये मैदान में। वे चारो अभी भी अस्त्र लेकर खड़े हैं। धीरे-धीरे वे पीछे हटने लगे, तब हमें याद आया कि हमसे बड़ी भूल हुई। हम तुम लोगों से व्यर्थ अनुनय-विनय कर रहे थे। तुम लोग हमें नहीं मार सकते। कल गुरु महाराज की छड़ी लगी है, अब तो तुम हमें मार ही नहीं सकते। वे पीछे हटे और गायब हो गये।

हमने गुरु महाराज से पूछा— महाराज, आप छड़ी क्यों मारते हैं? छड़ी और मौत से बचने का क्या मतलब? वह बोले— बेटा, भगवान जब स्वरूप देते हैं — सहज स्वरूप — दर्शन, स्पर्श और स्थिति देते हैं, विलय कर लेते हैं तो कुछ हथियार भी दे दिया करते हैं जिससे लड़त-भिड़त मैं निश्चिन्त हूँ। भगवान ने मोसे कहा— बायें हाथ से छू दोगे तो सज्जी कर्म हो जाई। दाहिने हाथ से छू दोगे तो उसका कल्याण होगा। कल फाँसी होनी है, आज हमारी छड़ी लग जाय तो सजा चाहे जो हो जाय, फाँसी नहीं हो सकती। तोरे दाहिने हाथ में ये गुण है, तोरे बायें हाथ में ये गुण है; तोरे जबान में ये गुण है, किसी को जद-बद, खरी-खोटी कह दोगे तो जिसके लिए आया है, वह काम हो जायेगा। इसीलिए मैं गाली देता हूँ, नहीं तो हम लोगों को गाली देना कहा शोभा है— **‘गारी देत न पावहु सोभा।’** कतई शोभा नहीं है लेकिन कुछ खरी-खोटी न कहूँ तो वह जिस काम से आया है, उसका काम नहीं होगा। और अगर कह दूँ— हट गँवार कहीं का, चला आया साधु होने। जटा फकिरऊ, आचरन गृहस्थऊ — तो उसका कल्याण हो जायेगा। उस दिन से वह भजन करने लगता है। तब हमने बताया कि हमने ऐसा-ऐसा देखा है। वह बोले— बस बेटा, तुम्हें आज ही मरना था, तू तो बच गया। हम बोले— ऐसे कब तक बचब? वह बोले— तू भजन कर, काल कबो पास में न आई। मैंने सोचा कि अब इतना भजन करूँगा कि इनकी पकड़ से ऊपर उठ जाऊँगा। जीवन में जो मित्र बनकर, संबंधी बनकर, पिता बनकर, पुत्र बनकर जो आते हैं ये सब पूर्व के बदले हैं; और कुछ नहीं। सभी काल के गाल में हैं। उनसे बचने का उपाय है प्रभु का सतत स्मरण, नाम-जप! यही महामृत्युंजय है।



**योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।  
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः।।(गीता,६/४७)**

सम्पूर्ण निष्काम कर्मयोगियों में भी जो श्रद्धाविभोर होकर  
अन्तरात्मा से, अन्तर्चिन्तन से मुझे निरन्तर भजता है, वह योगी  
मुझे परमश्रेष्ठ मान्य है। भजन दिखावे या प्रदर्शन की वस्तु नहीं  
है। इससे समाज भले ही अनुकूल हो किन्तु प्रभु प्रतिकूल हो जाते  
हैं। भजन अत्यन्त गोपनीय है और वह अन्तःकरणसे होता है।

उसका उतार-चढ़ाव अन्तःकरण के ऊपर है।

**- 'यथार्थ गीता' से साभार**

**श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट**  
न्यू अपोलो स्टेट, गाला नं- ५, मोगरा लेन (रेलवे सब वे के पास) अंधेरी (पूर्व),  
मुम्बई - ४०००६९. फोन - (०२२) २८२५५३००.  
ई-मेल - [contact@yatharthgeeta.com](mailto:contact@yatharthgeeta.com) वेबसाइट - [www.yatharthgeeta.com](http://www.yatharthgeeta.com)